अध्याय - 7

ब्रिटिश शासन एवं शिक्षा

पिछले कुछ अध्यायों में आप जान चुके हैं कि अंग्रेजी शासन के कारण भारतीय लोगों के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में किस तरह के परिवर्तन आए। यहाँ आप जानेंगे कि अंग्रेजों द्वारा भारत में पहले से प्रचलित शिक्षा व्यवस्था में क्या बदलाव किया गया। शिक्षा के क्षेत्र में उनके द्वारा जो भी बदलाव किए गए उसके पीछे कुछ कारण अवश्य रहें होंगे। शासन व्यवस्था द्वारा किए जाने वाले किसी काम के पीछे भी कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं, इस बात को आप वर्त्तमान सरकार के कार्यों से भी समझ सकते हैं। जैसे,आप जहाँ पढ़ते हैं वहाँ आपको 'मुफ्त किताब, स्कूल ड्रेस, और दोपहर का खाना, मिलता होगा। सरकार का यह काम आपको स्कूल से जोड़े रखने के लिए मुख्यतः किया गया है। ठीक इसी तरह अंग्रेजों द्वारा भारत में शिक्षा के क्षेत्र में जो भी नई बात लाई गई उसके कारण और उद्देश्यों को आप इस पाठ में जान पाएंगे।

अंग्रेज शिक्षा को किस तरह देखते थे– अंग्रेजों ने अपने शासन के पहले 60 वर्षों के दौरान शिक्षा के क्षेत्र में कोई भी नया काम नहीं किया। भारत में जैसे लोग पढ़ते थे, जिस प्रकार के स्कूल और पाठ्यक्रम थे, उसे वैसे ही रहने दिया गया। यहाँ के लोगों को अपने देश के लोगों की तरह पढ़ाने का उन्होंने कोई प्रयास नहीं किया। लेकिन 1781 में कलकत्ता में स्थापित 'मदरसा' और बनारस में स्थापित "संस्कृत कॉलेज" इसके अपवाद थे। इन दोनों संस्थाओं को हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रचलित कानूनों और परम्पराओं को समझने के लिए स्थापित किया गया था। अंग्रेज उन परम्पराओं को इसलिए जानना चाहते थे ताकि भारत में शासन चलाना आसान हो जाए। इसका एक उद्देश्य यह भी था कि कंपनी द्वारा भारत में जो अदालतें बनाई गई थीं, जिसमें भारतीय लोगों से जुड़े मुकदमे सुने जाते थे, उनके लिए कुछ जानकार लोग उन्हें आसानी से मिल जाए। तब आप यह सोचेंगे कि फिर आखिर क्या हुआ

©BSTBPC WEB COPY NOT TO BE PUBLISHED

कि अंग्रेज भारतीय शिक्षा में परिवर्तन करने के लिए बाध्य हो गए।

मदरसा—सीखने के स्थान को अरबी भाषा में मदरसा कहा जाता है। यह स्कूल, कॉलेज के समान संस्था हो सकती है जहाँ बच्चे पढ़ते हैं।

असल में उस समय कई ऐसे अंग्रेज अधिकारी और कर्मचारी थे जो भारतीय साहित्य, धर्म दर्शन और संस्कृति को पूरी तरह जानना चाहते थे। इसके पीछे उनकी इस क्षेत्र में रूचि महत्वपूर्ण थी, ना कि शासन का उद्देश्य। इन लोगों में विलियम जोन्स प्रमुख थे। इस तरह के लोग जब से भारत आए थे तभी से यहाँ प्रचलित भाषाओं को सीख रहे थे जिनमें फारसी और संस्कृत प्रमुख भाषा थी। वे जानते थे कि इन्ही दो भाषाओं में अधिकांश पुस्तकें लिखी गई हैं जिसमें भारत की संस्कृति सभ्यता और परम्परा की पूरी जानकारी है। फारसी और संस्कृत को सीख कर वे भारतीय पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद भी कर रहे थे। इसी क्रम में कालिदास रचित नाटक अभिज्ञान शाकुन्तलम्, हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थ 'गीता', मनुस्मृति, पंचतंत्र, हितोपदेश इत्यादि पुस्तकों का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। जोन्स साहब ने अपने इस काम को व्यवस्थित करने के लिए कलकत्ता में 1784 में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल नामक संस्था को भी स्थापित किया। इस संस्था से समय—समय पर एक पत्रिका भी निकाली जाती थी जिसमें प्राचीन भारतीय परम्पराओं और अच्छाइयों की चर्चा होती थी।

चित्र 1 – विलियम जोन्स फारसी भाषा सीख रहे हैं

चित्र 2 – एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल

विलियम जोन्स भारत के प्रति आदर और सम्मान का भाव अपने मन में रखते थे। वे मानते थे कि प्राचीन काल में भारत अपने वैभव के शिखर पर था। अगर भारत की श्रेष्ठता को

© BSTBPC NOT TO BE REPUBLISHED
WEB COPY

जानना है तो उस समय लिखे जाने वाले महान् भारतीय ग्रंथों जैसे वेद, उपनिषद, स्मृति, धर्म–सूत्र (इनके विषय में आप कक्षा 6 में पढ़ चुके हैं) को पढ़ना जरुरी है। उनका मानना था कि अगर भारत में एक बेहतर अंग्रेजी शासन कायम करना है तो इन ग्रंथों को पढ़ना और समझना आवश्यक होगा। विलियम जोन्स के इस विचार ने उस समय बहुत सारे अंग्रेजों को जो भारत में कार्यरत थे भारतीय अतीत को जानने के लिए प्रेरित किया। भारत में जोन्स की तरह विचार रखने वाले अंग्रेजों की एक बड़ी संख्या हो गई जो भारतीय ज्ञान–विज्ञान को बढ़ावा देने की माँग अंग्रेजी सरकार से करने लगी। इसी तरह के विचार और प्रयासों ने अंग्रेजी सरकार पर शिक्षा के क्षेत्र में कुछ काम करने के लिए दबाव बनाया। इसी के तहत 1813 ई० में ब्रिटिश संसद में बनने वाले एक कानून को आप देख सकते हैं। इस कानून में यह कहा गया था कि अंग्रेजी सरकार प्रति वर्ष एक लाख रुपया भारत में शिक्षा क्षेत्र में खर्च करेगी। इस कानून के लिए एक महत्वपूर्ण कारक यह भी था कि "इस समय तक भारत में अंग्रेजी शासन का क्षेत्र काफी फैल चुका था। इस बड़े क्षेत्र पर शासन संचालन के लिए कर्मचारियों की एक बड़ी संख्या की आवश्यकता थी। इतने लोग इंग्लैण्ड से नहीं आ सकते थे। सरकार को भारत में ही कर्मचारियों को तैयार करना था। अतः शासन के लायक काम के लिए उन्हें शिक्षित करना आवश्यक था। यह भारत में अभी तक प्रचलित शिक्षा से पूरा नहीं हो पाता। इस बात ने भी शिक्षा के क्षेत्र में कुछ नया करने को अंग्रेजी सरकार को बाध्य किया। भारत में प्रचलित शिक्षा क्यों अंग्रेजों के लिए शासन कार्य हेतु उपयोगी नहीं थी इसे आप इसी पाठ में आगे जानेंगे।

गतिविधि –1 जोन्स– प्राचीन भारतीय ग्रंथों को पढ़ना जरूरी क्यों समझते थे–सोचें

शिक्षा नीति संबंधी विवाद– शिक्षा के क्षेत्र में खर्च करने के लिए पैसा तो मिल गया लेकिन अब सवाल यह था कि उसे खर्च किस रूप में किया जाए। कुछ अंग्रेज विद्वानों का कहना था कि इस पैसे को भारतीय विद्या और ज्ञान के प्रसार में खर्च करना चाहिए। इन लोगों पर जोन्स महोदय का प्रभाव था। यह वर्ग कहता था कि भारतीयों को उनकी भाषा में

©BSTBPC WEB COPY NOT TO BE REPUBLISHED

ही पढ़ाया जाय इससे कर्मचारियों की आपूर्ति भी हो जाएगी साथ ही भारत की परम्परा को भी जानने में सहायता मिलेगी। ये दोनों बात भारत में अंग्रेजी शासन को मजबूत और स्थायी बनाएँगी। इसके विपरीत अंग्रेजों का एक बड़ा वर्ग इस बात की आलोचना कर रहा था। इन लोगों का कहना था कि भारतीय शास्त्र अवैज्ञानिक और गलत सूचनाओं से भरे हुए हैं। इसलिए इतना पैसा इस पुरातन भारतीय शिक्षा पर खर्च करना मूर्खता है। इस मत के प्रमुख विचारक जेम्स मिल और मैकॉले थे। इन लोगों का मानना था कि भारतीयों को व्यवहारिक जीवन की शिक्षा देनी चाहिए। उन्हें यह बताना आवश्यक है कि इंग्लैण्ड एवं अन्य यूरोपीय देश किस प्रकार वैज्ञानिक एवं तकनीकी सफलता हासिल कर सकें।

इस विवाद में एक खास बात यह उभर कर आयी कि उस समय के कुछ जागरूक भारतीयों जिनमें राजा राम मोहन राय प्रमुख थे, ने भी इंग्लैण्ड में प्रचलित शिक्षा का ही भारत में प्रसार करने की वकालत की। इन भारतीयों का भी मानना था कि भारत की प्रगति इसी शिक्षा के माध्यम से संभव है। राजा राम मोहन राय लगातार इस मत का प्रचार करते रहे। विवाद में मैकॉले ने अपना पक्ष अर्थात वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा का प्रसार, काफी मजबूती से रखा। इस शिक्षा के लिए भाषा के रूप में अंग्रेजी को प्रमुख बताया। वह कहते थे कि अंग्रेजी भाषा पढ़ने से भारतीयों को दुनिया की श्रेष्ठ जानकारी मिल पाएगी।

मैकॉले के मत को ही अंततः अंग्रेजी सरकार ने मान लिया। 1835 में इसी के आधार पर एक अधिनियम पारित किया गया। इसे ही आधुनिक शिक्षा अधिनियम के नाम से जाना गया। इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई कि अंग्रेजी उच्च शिक्षा का माध्यम होगा तथा भारतीय भाषाओं और उनमें दी जाने

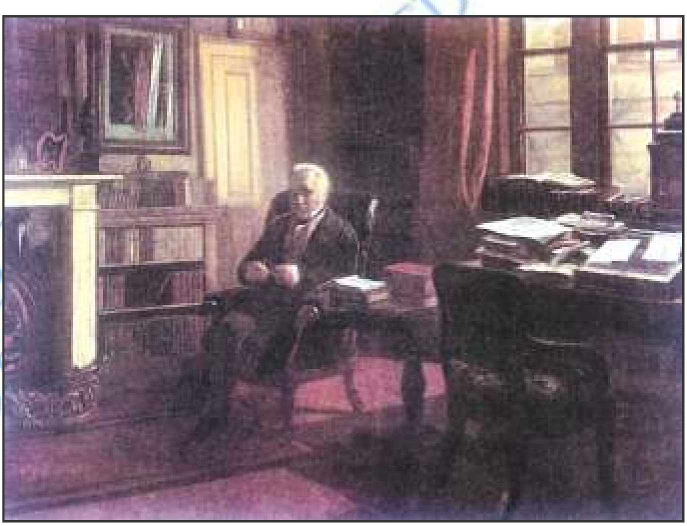

चित्र 3 – मैकॉले और उसका अध्ययन कक्ष

वाली शिक्षा को प्रोत्साहित नहीं किया जाएगा। स्कूल स्तर की शिक्षा के स्वरूप को पहले वाले रूप में ही छोड़ दिया गया, फिर भी स्कूली पाठ्यपुस्तकों की भी अंग्रेजी में छपाई होने लगी। इस तरह भारत में पहली बार लोगों के लिए एक नई शिक्षा व्यवस्था शुरू की गई।

गतिविधि– कल्पना करें, अंग्रेज भारतीय लोगों के मानस को अपने अनुसार क्यों ढालना चाहते थे।

व्यवसाय के लिए शिक्षा– इस शिक्षा नीति में 1854 में एक बड़ा बदलाव किया गया। अब यह तो तय हो ही चुका था कि इस क्षेत्र में सभी प्रयास आधुनिक शिक्षा के विकास के लिए होगा। 1854 में इसे ही और मजबूत एवं व्यवस्थित बनाया गया। इस वर्ष इंग्लैण्ड से अंग्रेज प्रशासकों द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी सरकार के नाम शिक्षा से संबंधित एक नीति संबंधी पत्र भेजा गया। इस नीति पत्र में (वुड्स डिस्पैच) भारत में लागू होने वाली संपूर्ण शिक्षा नीति की रूपरेखा थी। इसका एक बड़ा उद्देश्य था आधुनिक शिक्षा के माध्यम से भारतीय लोगों के मानस को बदलना ताकि उनकी जीवन शैली यूरोपिय हो जाए। आज भी शिक्षा को ही व्यक्ति के मानस को निर्मित करने वाला बड़ा आधार माना जाता है। शायद अंग्रेजों को ऐसा लगता होगा कि उनकी शैली को अगर भारतीय अपना ले तो यहाँ उनका शासन स्थायी बना रहेगा।

1854 की नीति का महत्त्व– इसी से भारत में आधुनिक शिक्षा के ढाँचे का निर्माण हुआ। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक के लिए एक नियम बनाया गया। शिक्षा संबंधी सभी मामलों पर सरकार का नियंत्रण हो गया। प्राथमिक शिक्षा की भाषा भारतीय रही जबकि उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को बनाया गया। उच्च शिक्षा को नियमित करने के लिए विश्वविद्यालयों को स्थापित किया गया। 1857 में तीन विश्व–

चित्र 4 – कलकत्ता विश्वविद्यालय

WEB COPY © BSTBPC NOT TO BE PUBLISHED

विद्यालय बनाये गये, कलकत्ता, मुम्बई और मद्रास में। जिला स्तर पर हाई स्कूल सरकारी प्रयासों से शुरू हुए। निजी स्तर पर भी विद्यालयों की स्थापना और संचालन की अनुमति मिली। कुल मिलाकर आज जिस तरह की शिक्षा का स्वरुप देख रहे वह सभी इस नीति पत्र की ही देन हैं। जिस प्रकार के पाठ्यक्रम एवं पढ़ाई का तौर तरीका आज आप देख रहें है वह 1854 के बाद से ही अस्तित्व में आया है।

स्थानीय पाठशालाओं का क्या हुआ– क्या आपको कुछ अंदाजा है कि अंग्रेजों से पहले यहाँ बच्चों को किस तरह पढ़ाया जाता था? क्या आपने कभी सोचा है कि उस समय बच्चे स्कूल जाते भी थे या नहीं? और अगर स्कूल थे तो ब्रिटिश शासन के तहत उनका क्या हुआ?

विलियम ऐडम की रिपोर्ट– 1830 के दशक में स्कॉटलैंड से आए ईसाई प्रचारक विलियिम ऐडम ने बंगाल और बिहार के जिलों का दौरा किया। कंपनी ने उन्हें देशी स्कूलों में शिक्षा की प्रगति पर रिपोर्ट तैयार करने का जिम्मा सौंपा था। ऐडम की रिपोर्ट दिलचस्प थी।

ऐडम ने पाया कि बंगाल और बिहार में एक लाख से ज़्यादा पाठशालाएँ थीं। ये बहुत छोटे–छोटे केन्द्र थे जिनमें आम तौर पर 20 से ज्यादा विद्यार्थी नहीं होते थे। फिर भी, इन पाठशालाओं में पढ़ने वाले बच्चों की कुल संख्या काफी बड़ी यानी बीस लाख से भी ज्यादा थी, ये पाठशालाएँ सम्पन्न लोगों या स्थानीय समुदाय द्वारा चलाई जा रही थीं। कई पाठशालाएँ स्वयं गुरु द्वारा ही प्रारंभ की गई थीं।

शिक्षा का तरीका काफी लचीला था। आज आप जिन चीजों की स्कूलों से उम्मीद करते हैं उनमें से कुछ चीजें उस समय की पाठशालाअें में भी मौजूद थीं। बच्चों की फीस निश्चित नहीं थी। छपी हुई किताबें नहीं होती थीं, पाठशाला की इमारत अलग से नहीं बनाई जाती थी, बेंच और कुर्सियाँ नहीं होती थीं, ब्लैक बोर्ड नहीं होते थे, अलग से कक्षाएँ लेने, बच्चों की हाजिरी लेने का कोई इंतजाम नहीं होता था, सालाना इम्तहान और नियमित समय सारणी जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। कुछ पाठशालाएँ बरगद की छाँव में ही चलती थीं तो कई गाँव की दूकान या मंदिर के कोने में या गुरु के घर पर ही बच्चों को पढ़ाया जाता था।

© BSTBPC WEB COPY NOT TO BE PUBLISHED

बच्चों की फीस उनके माँ–बाप की आमदनी से तय होती थी अमीरों को ज़्यादा और गरीबों को कम फीस देनी पड़ती थी। शिक्षा मौखिक होती थी और क्या पढ़ाना है यह बात विद्यार्थियों की जरूरतों को देखते हुए गुरु ही तय करते थे। विद्यार्थियों को अलग कक्षाओं में नहीं बिठाया जाता था। सभी एक जगह, एक साथ बैठते थे। अलग–अलग स्तर के विद्यार्थियों के साथ गुरु अलग से बात कर लेते थे।

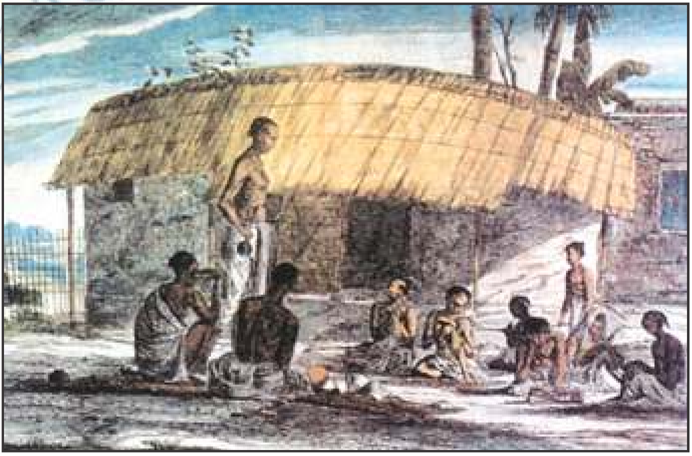

चित्र 5 – ग्रामीण पाठशाला

ऐडम ने पाया कि यह लचीली प्रणाली स्थानीय आवश्यकाताओं के लिए काफी अनुकूल थी। उदाहरण के लिए फसलों की कटाई के समय कक्षाएँ बंद हो जाती थीं क्योंकि उस समय गाँव के बच्चे प्रायः खेतों में काम करने चले जाते थे। कटाई और अनाज तैयार हो जाने के बाद पाठशाला दोबारा शुरु हो जाती थी। इसका परिणाम यह था कि साधारण काश्तकारों के बच्चे भी पढ़ाई कर सकते थे।

नई दिनचर्या, नए नियम– उन्नीसवीं सदी के मध्य तक कंपनी का ध्यान मुख्य रूप से उच्च शिक्षा पर था। इसीलिए कंपनी ने स्थानीय पाठशालाओं के कामकाज में कभी ज्यादा दखल नहीं दिया। 1854 के बाद कंपनी ने देशी शिक्षा व्यवस्था में सुधार लाने का फैसला लिया। कंपनी का मानना था कि इसके लिए मौजूदा व्यवस्था के भीतर ही बदलाव किये जा सकते हैं। कंपनी एक नई दिनचर्या, नए नियमों और नियमित निरीक्षणों के जरिए पाठशालाओं को और व्यवस्थित करना चाहती थी।

इसके लिए क्या किया जा सकता था? कंपनी ने क्या कदम उठाए? सबसे पहले तो कंपनी ने बहुत सारे पंडितों को सरकारी नौकरी पर रख लिया। इनमें से प्रत्येक पंडित को 4–5 स्कूलों को देखरेख का जिम्मा सौंपा जाता था। पंडितों का काम पाठशालाओं का दौरा

करना और वहाँ अध्यापन की स्थितियों में सुधार लाना था। प्रत्येक गुरु को निर्देश दिया गया कि वे समय–समय पर अपने स्कूल के बारे में रिपोर्ट भेजें और कक्षाओं को नियमित समय–सारणी के अनुसार पढ़ाएँ। अब अध्ययन पाठ्यपुस्तकों पर आधारित होगा और विद्यार्थियों की प्रगति को मापने के लिए वार्षिक परीक्षाओं की रूपरेखा तैयार की जाने लगी। विद्यार्थियों से कहा गया कि वे नियमित रूप से शुल्क दे, नियमित रूप से कक्षा में आएं, तय सीट पर बैठें और अनुशासन का पालन करें।

नए नियमों पर चलने वाली पाठशालाओं को सरकारी अनुदान मिलने लगे। जो पाठशालाएँ नई व्यवस्था के भीतर काम करने को तैयार नहीं थीं उन्हें कोई सरकारी सहायता नहीं दी जाती थी। जिन गुरुओं ने सरकारी निर्देशों का पालन करने की बजाय अपनी स्वतंत्रता बनाए रखी वे सरकारी सहायता प्राप्त और नियमों से चलने वाली पाठशालाओं के सामने कमजोर पड़ने लगे।

इन नए नियमों और दिनचर्या का एक और भी नतीजा हुआ। पहले वाली व्यवस्था में गरीब किसानों के बच्चे भी पाठशालाओं में जा सकते थे क्योंकि पाठशालाओं की समय–सारणी काफी लचीली होती थी। नई व्यवस्था के अनुशासन की माँग थी कि बच्चे नियमित रूप से स्कूल आएँ। अब कटाई के मौसम में भी बच्चों का स्कूल में आना जरूरी था जबकि उस समय गरीब घरों के बच्चे खेतों में काम करने जाया करते थे। अगर कोई बच्चा स्कूल नहीं आ पाता था तो उसे अनुशासनहीन माना जाता था यानी बच्चा पढ़ना–लिखना ही नहीं चाहता था।

राष्ट्रीय शिक्षा की कार्यसूची– केवल अंग्रेज अफसर ही भारत में शिक्षा के बारे में नहीं सोच रहे थे। उन्नीसवीं सदी की शुरुआत से ही भारत के विभिन्न भागों के बहुत सारे विचारक शिक्षा के व्यापक प्रसार की जरूरत पर जोर देने लगे थे। यूरोप में आ रहे बदलावों से प्रभावित कुछ भारतीयों का मानना था कि पश्चिमी शिक्षा भारत का आधुनिकीकरण कर सकती थी। उन्होंने अंग्रेजों से आवाह्न किया कि वे नए स्कूल कॉलेज और विश्वविद्यालय खोलें तथा शिक्षा पर ज़्यादा पैसा खर्च करें।

"अंग्रेजी शिक्षा ने हमें गुलाम बना दिया है"– महात्मा गांधी का कहना था कि औपनिवेशिक शिक्षा ने भारतीयों के मस्तिष्क में हीनता का बोध पैदा कर दिया है। इसके प्रभाव में आकर यहाँ के लोग पश्चिमी सभ्यता को श्रेष्ठतर मानने लगे और अपनी संस्कृति के प्रति उनका गौरव भाव नष्ट हो गया। महात्मा गांधी ने कहा कि इस शिक्षा में विष भरा है, यह पापपूर्ण है, इसने भारतीयों को दास बना दिया है, इसने लोगों पर दुष्प्रभाव डाला है। उनके मुताबिक, पश्चिम से अभिभूत, पश्चिम से आने वाली हर चीज की प्रशंसा करने वाले, इन संस्थानों में पढ़ने वाले भारतीय ब्रिटिश शासन को पसंद करने लगे थे। महात्मा गांधी एक ऐसी शिक्षा के पक्षधर थे जो भारतीयों के भीतर प्रतिष्ठा और स्वाभिमान का भाव पुनर्जीवित करे। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान उन्होंने विद्यार्थियों से आवाह्न किया कि वे शिक्षा संस्थानों को छोड़ दें और अंग्रेजों को बताएँ कि अब वे गुलाम बने रहने के लिए तैयार नहीं हैं।

महात्मा गांधी की दृढ़ मान्यता थी कि शिक्षा केवल भारतीय भाषाओं में ही दी जानी चाहिए। उनके मुताबिक, अंग्रेजी में दी जा रही शिक्षा भारतीयों को अपाहिज बना देती है, उसने उन्हें अपने सामाजिक परिवेश से काट दिया है और उन्हें "अपनी ही भूमि पर अजनबी" बना दिया है। उनकी राय में, विदेशी भाषा बोलने वाले, स्थानीय संस्कृति से घृणा करने वाले अंग्रेजी शिक्षित भारतीय अपनी जनता से जुड़ने के तौर–तरीके भूल चुके थे।

महात्मा गांधी का कहना था कि पश्चिमी शिक्षा मौखिक ज्ञान की बजाय केवल पढ़ने और लिखने पर केंद्रित है । उसमें पाठ्यपुस्तकों पर तो जोर दिया जाता है लेकिन जीवन के अनुभवों और व्यावहारिक ज्ञान की उपेक्षा की जाती है। गांधी का तर्क था कि शिक्षा से व्यक्ति का मस्तिष्क और आत्मविकास होना चाहिए। उनकी राय में केवल साक्षरता–यानी पढ़ने और लिखने की क्षमता पा लेना– ही शिक्षा नहीं होती। इसके लिए तो लोगों को हाथ से काम करना पड़ता है, हुनर सीखने पड़ते हैं और यह जानना पड़ता है कि विभिन्न चीजें किस तरह काम करती हैं। इससे उनका मस्तिष्क और समझने की क्षमता, दोनों विकसित होंगे।

जैसे–जैसे राष्ट्रीय भावना का प्रसार हुआ कई दूसरे विचारक भी एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के बारे में सोचने लगे जो अंग्रेजों द्वारा स्थापित की गई व्यवस्था से भिन्न हो।

"साक्षरता ही शिक्षा नहीं है"

महात्मा गांधी ने लिखा था : शिक्षा से मेरा मतलब इस बात से है कि बालक और मनुष्य के देह, मस्तिष्क और भावना की श्रेष्ठता को सामने लाया जाए। साक्षरता न तो शिक्षा का अंत है और न ही उसकी शुरुआत, यह तो केवल एक साधन है, जिसके जरिए पुरुषों और महिलाओं को शिक्षा दी जा सकती है। साक्षरता अपने आप में शिक्षा नहीं होती। लिहाजा, मैं बच्चों को शिक्षित करते हुए सबसे पहले उन्हें कोई उपयोगी हस्तकौशल सिखाऊँगा और उन्हें शुरू से ही कुछ रचने, पैदा करने के लिए तैयार करूँगा...। मेरा मानना है कि दिमाग और आत्मा का सर्वोच्च विकास इस तरह की शिक्षा में ही संभव है। प्रत्येक हस्तकौशल आज की तरह केवल यांत्रिक ढंग से ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक ढंग से पढ़ाया जाना चाहिए, यानी बच्चे को प्रत्येक प्रक्रिया के क्यों और किसलिए का पता होना चाहिए।

टैगोर का "शांतिनिकेतन"– आप में से बहुत लोगों ने शांतिनिकेतन के बारे में सुना होगा।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने यह संस्था 1901 में शुरू की थी। टैगोर जब बच्चे थे तो स्कूल जाने से बहुत चिढ़ते थे। वहाँ उनका दम घुटता था। उन्हें स्कूल का माहौल दमनकारी लगता था। टैगोर को ऐसे लगता था, मानो स्कूल कोई जेल हो, क्योंकि वहाँ बच्चे मनचाहा कभी नहीं कर पाते थे। जब दूसरे बच्चे शिक्षक को सुन रहे होते थे टैगोर का दिमाग कहीं और भटक रहा होता था। कलकत्ता के अपने स्कूल जीवन के अनुभवों ने शिक्षा के बारे में टैगोर के विचारों को काफी प्रभावित किया। जब वे बड़े हुए तो उन्होंने एक ऐसा स्कूल खोलने के बारे में सोचा जहाँ बच्चे खुश रह सकें, जहाँ वे मुक्त और रचनाशील हों, जहाँ वे अपने विचारों और आकांक्षाओं को समझ सकें। टैगोर को लगता था कि बचपन का समय अपने आप सीखने का समय होना चाहिए। वह अंग्रेजों द्वारा स्थापित की गई शिक्षा व्यवस्था के कड़े और बंधनकारी अनुशासन से उसे मुक्त करना चाहते थे। शिक्षक कल्पनाशील हों, बच्चों को समझते हों और उनके अंदर उत्सुकता, जानने की चाह विकसित करने में मदद दें। टैगोर के मुताबिक,

© BSTBPC WEB COPY NOT TO BE REPUBLISHED

वर्त्तमान स्कूल बच्चे की रचनाशीलता, कल्पनाशील होने के उसके स्वाभाविक गुण को मार देते हैं।

चित्र 6 – महात्मा गांधी और कस्तूबा गांधी शांति निकेतन में रवीन्द्रनाथ टैगोर और लड़कियों की एक टोली के साथ बैठे हैं, 1940

टैगोर का मानना था कि सृजनात्मक शिक्षा को केवल प्राकृतिक परिवेश में ही प्रोत्साहित किया जा सकता है। इसलिए उन्होंने कलकत्ता से 100 किलोमीटर दूर एक ग्रामीण परिवेश में अपना स्कूल खोलने का फैसला लिया। उन्हें यह जगह निर्मल शांति से भरी (शांतिनिकेतन) दिखाई दी जहाँ प्रकृति के साथ जीते हुए बच्चे अपनी स्वाभाविक सृजनात्मक मेधा को और विकसित कर सकते थे।

बहुत सारे मामलों में टैगोर और महात्मा गांधी शिक्षा के बारे में कमोबेश एक जैसी राय रखते थे। लेकिन दोनों के बीच फर्क भी था। गांधीजी पश्चिमी सभ्यता और मशीनों व प्रौद्योगिकी की उपासना के कट्टर आलोचक थे। टैगोर आधुनिक पश्चिमी सभ्यता और भारतीय परंपरा के श्रेष्ठ तत्वों का सम्मिश्रण चाहते थे। उन्होंने शांतिनिकेतन में कला, संगीत और नृत्य के साथ–साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी की शिक्षा पर भी जोर दिया।

इस प्रकार बहुत सारे लोग इस बारे में सोचने लगे थे कि एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की रूपरेखा क्या होनी चाहिए। कुछ लोग अंग्रेजों द्वारा स्थापित की गई व्यवस्था में परिवर्तन चाहते थे। उनका मानना था कि इस व्यवस्था को इस तरह फैलाया जाए कि उसमें ज्यादा से ज्यादा लोगों को पढ़ने के मौके मिले। इसके विपरीत बहुत सारे लोग ऐसे भी थे जो एक वैकल्पिक व्यवस्था चाहते थे ताकि लोगों को सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय संस्कृति की शिक्षा दी जा सके। कौन तय करे कि सच्चे अर्थों में राष्ट्रीयता क्या होता है? इस ''राष्ट्रीय शिक्षा'' की बहस स्वतंत्रता के बाद भी जारी रही।

आधुनिक शिक्षा और बिहार– अभी तक इस पाठ में आपने जिन–जिन बातों को जाना, उसका सीधा प्रभाव बिहार पर भी हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजों द्वारा किए गए सारे प्रयास सबसे पहले बंगाल में हुए। बिहार 1911 तक बंगाल का ही एक हिस्सा था इसलिए वहाँ जो कुछ भी हो रहा था उससे बिहार अलग नहीं रहा। 1835 में शुरू हुई नई शिक्षा नीति के बाद से बिहार में भी आधुनिक शिक्षा का ढाँचा विकसित होने लगा। सरकारी और व्यक्तिगत प्रयासों से कई स्कूल शुरू हुए जहाँ आधुनिक शिक्षा लागू किया गया। सरकारी प्रयासों से सबसे पहले 1835 में ही पटना में पटना कॉलेजियट हाई स्कूल स्थापित किया गया। यह बिहार का प्रथम आधुनिक स्कूल था। इसी कड़ी में 1836 में आरा में हाई स्कूल खुला। 1837 में भागलपुर और 1839 में छपरा तथा 1845 में गया एवं मुजफ्फरपुर में हाई स्कूल सरकार के द्वारा स्थापित किये गये। अभी इन सबों को जिला स्कूल के नाम से जाना जाता है।

व्यक्तिगत प्रयासों के तहत बड़े जमींदारों एवं व्यापारियों द्वारा भी सरकारी अनुमति से आधुनिक स्कूल स्थापित किए गए, जैसे गया स्थित टिकारी में वहाँ के जमींदार द्वारा स्थापित टिकारी राज स्कूल या दरभंगा में वहाँ के राजा द्वारा स्थापित दरभंगा राज स्कूल तथा पटना में ही कुल्हड़िया के जमींदार द्वारा शुरू किया गया बिहार नेशनल हाई स्कूल, जो बाद में बिहार नेशनल कॉलेज बना, प्रमुख है। बंगाली समुदाय द्वारा भी बिहार में स्कूली शिक्षा को बढ़ावा देने में काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की गई। जिसमें 1867 में पटना स्थित बाँकीपुर बालिका विद्यालय (लड़कियों का प्रथम स्कूल) हो या 1868 में भागलपुर में स्थापित मोक्षदा बालिका विद्यालय या फिर 1884 में मुजफ्फरपुर में स्थापित मुखर्जी सेमिनरी प्रमुख है। मुस्लिम समुदाय के द्वारा भी सर सैय्यद के आंदोलन से प्रेरित पटना के मौलवी मोहम्मद हसन ने मोहम्मेडन ऐंग्लो अरेबिक स्कूल की 1884 में स्थापना की। इन सभी स्कूलों का आधुनिक शिक्षा के प्रसार में बड़ा योगदान रहा। कुछ स्कूल अंग्रेजों के व्यक्तिगत प्रयास से भी शुरू हुए जैसे 1880 में दरभंगा में नार्थब्रुक हाई स्कूल (आज का जिला स्कूल) और 1901 में समस्तीपुर का वाटसन हाई स्कूल इसी श्रेणी में आएगा।

जहाँ तक उच्च शिक्षा से जुड़ी संस्थाओं जैसे कॉलेज और विश्वविद्यालय की बात है तो यहाँ भी कुछ कॉलेज सरकारी प्रयास से खोले गए जैसे 1863 में पटना में स्थापित पटना कॉलेज पटना (बिहार का सबसे पुराना कॉलेज) तो 1878 में स्थापित तेजनारायण जुबली कॉलेज भागलपुर, 1889 में बिहार नेशनल कॉलेज पटना और 1898 में स्थापित डायमंड जुबली कॉलेज मुंगेर। जमींदारों और व्यापारियों के संरक्षण में स्थापित भूमिहार ब्रह्मण कॉलेज एक सामाजिक संगठन भूमिहार ब्राह्मण सभा द्वारा स्थापित किया गया।

ईसाई धर्मप्रचारकों द्वारा भी भारत के साथ–साथ बिहार के कई हिस्सों में स्कूल का स्थापित कर आधुनिक शिक्षा को बढ़ावा दिया गया। ईसाईयों ने सबसे पहले बेतिया के क्षेत्र में अपना कार्य आरंभ किया उसके बाद पटना और दानापुर तथा अन्य क्षेत्रों में पहुँचे। उनके द्वारा स्थापित पटना स्थित संत जोसेफ कॉन्वेन्ट स्कूल 1853 एवं संत माइकल स्कूल 1854 आज भी बिहार के गिने चुने अच्छे स्कूलों में आते हैं। इन स्कूलों का आधुनिक शिक्षा के प्रसार में काफी बड़ा योगदान है।

लंगट सिंह कॉलेज – बिहार के पाँचवें एवं उत्तर बिहार के प्रथम कॉलेज के रूप में 1899 में स्थापित इस कॉलेज का बिहार में आधुनिक शिक्षा के प्रसार में काफी बड़ा योगदान है। कॉलेज की स्थापना इसी वर्ष में मुजफ्फरपुर शहर में आयोजित 'भूमिहार ब्राह्मण सम्मेलन' में पारित प्रस्तावों के बाद हुआ। कॉलेज की स्थापना से लेकर इसके विकास तक में लंगट सिंह की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण रही। उन्होंने अपने जीवन भर की कमाई इस कॉलेज को दान कर दी। कॉलेज को आर्थिक मदद देने में काशी तथा दरभंगा के राजा और स्थानीय जमींदार एवं व्यापारियों

चित्र 7 – लंगट सिंह कॉलेज

का योगदान भी महत्वपूर्ण था। स्थापना वर्ष में यह इंटर तक ही मान्य था। 1900 ई. में इसे बी.ए. तक मान्यता मिली। आरंभ में पाँच विषय गणित, संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी और फारसी की पढ़ाई शुरू हुई। शुरू के साल में पाँच शिक्षक और 72 छात्र ही थे। इस कॉलेज में कुछ दिनों तक डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने भी इतिहास विषय के अध्यापक के रूप में अपना योगदान दिया था। 1915 में इसे अंग्रेजी सरकार ने अपने अधिकार में लिया। 1950 ई. में लंगट सिंह के द्वारा कॉलेज को दिए गए योगदानों के कारण इसका नाम इन्हीं के नाम पर कर दिया गया।

इन तमाम शैक्षणिक प्रयासों के बावजूद 1835 से 1859 तक भारतीय लोगों द्वारा आधुनिक शिक्षा के प्रति उतना आकर्षण देखने को नहीं मिलता, खासकर बिहार में। फिर भी अंग्रेजों ने भारत में एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की नींव अवश्य डाली जिसने भारत को आधुनिक राष्ट्र के रूप में परिवर्तित करने में प्रभावी भूमिका अदा की। वर्तमान भारत के शैक्षणिक ढांचा की पृष्ठभूमि अंग्रेजों द्वारा स्थापित यह आधुनिक शिक्षा ही रही। इस शिक्षा से तत्कालीन भारतीय समाज में क्या बदलाव आया इसके विषय में आप आगे पढ़ेगें।

अभ्यास

आइये फिर से याद करें :

1. सही विकल्प को चुनें।

(i) विलियम जोंस भारतीय इतिहास, दर्शन और कानून का अध्ययन को क्यों जरूरी मानते थे।

(क) भारत में बेहतर अंग्रेजी शासन स्थापित करने के लिए।

(ख) प्राचीन भारतीय पुस्तकों के अनुवाद (अंग्रेजी में) के लिए।

(ग) अपने भारत प्रेम के कारण।

(घ) भारतीय ज्ञान–विज्ञान को बढ़ावा देने के लिए।

WEB COPY : NOT TO BE PUBLISHED © BSTBPC

(ii) आधुनिक शिक्षा की भाषा किसको बनाया गया

(क) हिन्दी (ख) बांगला (ग) अंग्रेजी (घ) मराठी

(iii) एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना किसने किया।

(क) मैकाले (ख) विलियम जोंस (ग) कोलब्रुक (घ) वारेन हेस्टिंग्स

(iv) औपनिवेशिक शिक्षा ने भारतीयों के मस्तिष्क में हीनता का बोध पैदा कर दिया? गाँधी जी ऐसा क्यों मानते थे।

(क) भारतीयों द्वारा पश्चिमी सभ्यता को श्रेष्ठ मानने के कारण।

(ख) अंग्रेजी भाषा में शिक्षा के कारण।

(ग) पाठ्य पुस्तकों पर शिक्षा को केन्द्रित करने के कारण।

(घ) भारतीयों का अंग्रेजी शासन के समर्थन करने के कारण।

2. निम्नलिखित के जोड़े बनाएँ

(क) विलियम जोंस .... अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहन।

(ख) रवीन्द्रनाथ टैगोर .... प्राचीन संस्कृतियों का सम्मान।

(ग) टॉमस मेकॉले .... गुरु।

(घ) महात्मा गाँधी .... प्राकृतिक परिवेश में शिक्षा।

(ङ) पाठशालाएँ .... अंग्रेजी शिक्षा के विरूद्ध।

आइए विचार करें :

(i) भारत के विषय में विलियम जोंस के विचार कैसे थे? संक्षेप में बताएँ

(ii) टॉमस मैकॉले भारत में किस प्रकार की शिक्षा शुरू करना चाहते थे, इस सम्बन्ध में उनके क्या विचार थे।

(iii) भारत में अंग्रेजी शिक्षा का उद्देश्य क्या था? उसका स्वरूप कैसा था

© BSTBPC WEB COPY, NOT TO BE PUBLISHED

(iv) शिक्षा के विषय में महात्मा गाँधी एवं रवीन्द्र टैगोर के विचारों को बताएँ

(v) अंग्रेज विद्वानों के बीच शिक्षा नीति के विषय में किस प्रकार के विवाद थे। इस सम्बन्ध में आप क्या सोचते हैं बताएँ

आइए करके देखे :

(I) अपने घर या पड़ोस के बुजुर्गों से पता करें कि स्कूल में उन्होंने कौन–कौन सी चीजें पढ़ी थीं ? अभी आप उसमें क्या बदलाव देखते हैं।

(ii) अंग्रेजी शासन के दौरान बिहार में आधुनिक शिक्षा के विकास के लिए जो प्रयास किया गया उसके विषय में वर्ग में शिक्षक के सहयोग से परिचर्चा करें।

© BSTBPC WEB COPY ,NOT TO BE PUBLISHED